॥ उपनिषद् मन्त्र ॥

श्लोक १

जिस तरह जगत में व्याप्त एक ही अग्नि अलग-अलग पदार्थों की संगति से उन-उन रूपों को धारण करती है, उसी तरह सर्व भूतों के अन्दर रहने वाला आत्मा एक होते हुए भी हर एक रूपधारी के साथ उस-उस रूप का बन जाता है और उसके बाहर अलिप्त भी रहता है।

श्लोक २

जिस तरह एक ही वायु जगत में प्रवेश करके अलग-अलग पदार्थों के आधार से उन-उन आकारों को धारण करती है, उसी तरह सर्व भूतों के अन्दर रहने वाला आत्मा एक होते हुए भी हर एक रूपधारी के साथ उस-उस रूप का बनता है और उसके बाहर अलिप्तभाव से भी रहता है।

श्लोक ३

सब लोकों का नेत्ररूप सूर्य जिस तरह साधारण नेत्रों के बाह्य दोषों से अछूता रहता है, उसी तरह सब भूतों के अन्दर रहने वाला आत्मा बाहर भी अलिप्त भाव से रहने के कारण लोक-दुःख से लिप्त नहीं होता।

श्लोक ४

जो धीरपुरुष एक, स्वायत्त, सब भूतों में व्याप्त, एक ही स्वरूप को अनेक तरह से बनाने वाले परमेश्वर को अपने में स्थित देख लेते हैं, उन्हीं को शाश्वत सुख मिलता है, दूसरों को नहीं।

श्लोक ५

धीर पुरुष सब अनित्य पदार्थों में पाए जाने वाले एक, नित्य और सभी चेतन पदार्थों को चेतना देने वाले, स्वयं एक होकर अनेकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले परमेश्वर को अपने में स्थित देख लेते हैं, उन्हीं को शाश्वत शान्ति मिलती है, दूसरों को नहीं।

श्लोक ६

शुक बोले,
हे राजन्! महाप्रसाद में, गोविन्द में, भगवन्नाम में, ब्रह्मज्ञानी में, वैष्णव जन में अल्प पुण्यशाली पुरुषों को ही विश्वास नहीं होता है।

श्लोक ७

शैव 'शिव' रूप में जिसकी उपासना करते हैं, वेदान्ती 'ब्रह्म' रूप से, बौद्ध 'बुद्ध' कहकर, प्रमाण में कुशल नैय्यायिक 'कर्ता' रूप से, जैन धर्मानुयायी 'अर्हत्' और मीमांसक जिनकी 'कर्म' रूप से उपासना करते हैं, वे तीन लोकों के नाथ ये हरि ही हैं, वे आपको इच्छित फल प्रदान करें।

श्लोक ८

हे राजन्, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि विष्णु के नामसंकीर्तन में न कोई देश का नियम है और न तो काल का ही कोई नियम है। अर्थात् किसी भी स्थान पर, किसी भी समय भगवान के नाम को गाया जा सकता है।

श्लोक ९

हे पृथ्वीपति! यज्ञ में, दान में काल का विचार है और स्नान तथा जप में भी समय का विचार है, लेकिन इस लोक में विष्णु का नाम गाने में कोई भी काल बाधक नहीं है।

श्लोक १०

यमराज की नगरी निश्चय ही निकट दिखाई देती है, इसलिए शिव का स्मरण कर, शिव का ध्यान कर, सदा शिव का चिन्तन कर।

श्लोक ११

मैं शिव हूँ, यह शिव है और तुम भी शिव ही हो, सब कुछ शिवमय है, शिव से परे कुछ नहीं है।

श्लोक १२

जो परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं, जो सबकी हृदयगुहा के भीतर स्थित हैं, जो अखिल विश्व की रचना करते हैं तथा स्वयं विश्वरूप होकर अनेक रूप धारण करते हैं, जो समस्त जगत को सब ओर से घेरे हुए हैं, उन एक परशिव को जानकर मनुष्य नित्य और असीम शान्ति प्राप्त कर लेता है।

श्लोक १३

मैं, सर्वत्र गमनशील, सर्व के कर्ता, स्वयं सब कुछ, सर्व के प्रकाशक, सर्व के आधार, शान्त, पूर्ण शिव को भजता हूँ।

श्लोक १४

सृष्टि के आदिकाल में भगवान ब्रह्मा ने इनकी उपासना करके सृष्टि रचने की सामर्थ्य प्राप्त की और इच्छित फलों को प्राप्त कर हृदय में सन्तुष्ट हो गए। धन्य है, वह विधाता ही उपास्य और उपासक बनता है।

श्लोक १५

जिसके हृदय में सनातन, अनादि, अनन्त विग्रहरूप शंकर सदा निवास करते हैं, उसका कुल पवित्र हो गया है, उसके पितरों का उद्धार हो गया है, उससे यह पृथ्वी और ब्राह्मण पवित्र हो गए हैं।

श्लोक १६

राजा शिबि बोले,
सभी सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी लोग सर्वत्र कल्याण को देखें, किसी को भी कभी दुःख न हो।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भाषान्तर : स्वाध्याय सुधा से
[चित्शक्ति पब्लिकेशन्स, २०१६] पृ १४०-१४४।

© २०२० एस.वाय.डी.ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।